उत्तरी और दक्षिणी तालों में अन्तर—उत्तरी और दक्षिणी तालों के वर्तमान स्वरूप का अध्ययन करने पर यह दिखाई देता है कि ताल के मूल सिद्धान्त और मूल स्वरूप आज भी प्राचीन पद्धति से सम्बद्ध हैं, किन्तु उसके आकार में परिवर्तन हुआ है। पारिभाषिक शब्द और उनके अर्थ बदले हैं। इसमें उर्दू, फारसी भाषाओं के अनेक शब्द आ गये हैं।

(१) प्रचलित कर्नाटकी ताल पद्धति प्राचीन काल की भरत कालीन ताल चिन्हों के समान प्रतीत होती है। कर्नाटकी ताल पद्धति के षड्-अंग; द्रुत, अणुद्रुत, लघु, गुरु, प्लुत, काकपद आदि चिन्हों का हिन्दुस्तानी ताल पद्धति में प्रयोग नहीं होता। यहाँ मात्राओं का दिग्दर्शन २ मात्राएं, चार या आठ मात्राएं कह कर हो जाता है।

(२) उत्तर तथा कर्नाटक दोनों ही संगीत में 'सशब्द' और 'निःशब्द' संज्ञाओं का लोप हो गया है। उत्तर में इनके स्थान पर 'ताली' और 'खाली' ये दो शब्द आ गये हैं। 'ताली' के लिए 'भरी' और 'पात' का भी प्रयोग होता है, 'खाली' इसके विपरीत 'निःशब्द' क्रिया है। दक्षिण में 'सशब्द' और 'निःशब्द' के लिये क्रमशः 'घातम्' और 'विसर्जितम्' संज्ञाएं हैं। 'ताली' और 'घातम्' में हाथ से एक ताल देकर उँगलियों से शेष मात्राएं गिनना और 'खाली' तथा 'विसर्जितम्' में हाथ से खाली दिखाना—ये क्रियाएं होती हैं।

(३) उत्तरी संगीत में हर ताल का ठेका निश्चित है। तबला, पखावज वादक के लिये भी ठेके का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि उन बोलों के अनुसार विस्तार किया जाता है।

कर्नाटक संगीत में उत्तर की तरह ठेके के बिना ताल का ज्ञान असंभव तो नहीं माना जाता, फिर भी अभ्यास के लिये तालों के कुछ बोल नियत अवश्य हैं। बोलों में तत्, दित, तों, नं प्रमुख हैं। प्रत्येक ताल की पहली मात्रा में 'तत्' का ही प्रयोग होता है। दक्षिण में जिस प्रकार अभ्यास के लिए निश्चित तानें बनी हुई हैं, उसी प्रकार तालों के अभ्यास के लिए भी निश्चित 'पाठ' बने हुए हैं, जो विभिन्न सम्प्रदायों के अनुसार अलग-अलग हैं। बोल बजाने के ढंग में भी सम्प्रदायों के अनुसार भेद होता है।

(४) हिन्दुस्तानी ताल पद्धति में अधिकतर ख्याल गायन के साथ तबले की संगत होती है। यहाँ तालों में तिलवाड़ा, एक ताल, झूमरा, त्रिताल, आड़ा चौताल और झपताल आदि ताल 'ख्याल' गायन के साथ तबले पर बजाये जाते हैं। चौताल, सूलताल ब्रह्मताल, मत्ततात, तीव्रा ताल जैसे 'ताल' ध्रुपद गायन के साथ मृदंग अथवा पखावज पर बजाये जाते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत में तालों की संख्या असीमित है, किन्तु कर्नाटक ताल पद्धति में तालों की संख्या सीमित है। साथ ही साथ ताल-लिपि एवं चिन्ह-संज्ञाएं भी भिन्न हैं। दक्षिणी ताल वादन में अधिकतर 'घटम्' ही ताल वादन का माध्यम है। प्रमुख ताल वाद्य "मृदंग" इस पद्धति में दिखायी देता है।

(५) कर्नाटकी तालों में जितने चिन्ह होंगे, उतने ही विभाग होंगे। जैसे—ध्रुव ताल में '।०।।' ये चार चिन्ह हैं, तो इस ताल में चार ही विभाग माने जायेंगे, परन्तु उत्तरी पद्धति में चिन्हों के अनुसार विभाग नहीं होते।

(६) दाक्षिणात्य संगीत में ताल की गति उतनी विलम्बित नहीं होती, जितनी उत्तर भारतीय संगीत में है। इस विभिन्नता का कारण यह है कि मात्रा का प्रभाव न तो स्थिर है और न तो एक सा ही है।

(७) दोनों ही ताल पद्धतियों में ताल, काल, मात्रा, लय, ताल के दस लक्षण, कायदे, परन, टुकड़े, मुखड़े में प्रयुक्त स्वर वर्ण-युक्त बोल आदि की परिभाषाएं समान रूप से स्वीकृत पायी जाती हैं। ताली, खाली, गीत, प्रकार, आदि बातों में दक्षिणी पद्धति की अपनी स्वतन्त्र शैली है। परन्तु इतना निश्चित ही है कि दोनों पद्धतियों में गायन तथा वादन में भिन्नता है।

(८) ख्याल-ध्रुपद आदि गायन प्रकारों के अनुकूल ताल-वादन-शैली हिन्दुस्तानी ताल पद्धति की विशेषता है एवं वर्णम्, कृति, तिल्लाना आदि गायन प्रकारों के अनुकूल ताल-वाद्य एवं ताल-वादन-शैली दक्षिणी पद्धति की अपनी विशेषता है। दोनों ही पद्धतियों में ताल का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है एवं गायन-वादन की शैलियों के अनुकूल ताल के विभिन्न रूप निर्धारित किए गए हैं।

उत्तरी ताल-पद्धति के एक ताल व चौताल दक्षिणी ताल-पद्धति के चतस्र जाति के अठताल के समान हैं। उसी प्रकार त्रिपुठ, तिस्र जाति की ताल हिन्दुस्तानी ताल तीव्रा के समान है।

वर्तमान काल में उत्तरी तथा दक्षिणी तालें, जो प्रचार में हैं, वे सब मध्ययुग की देन हैं। प्राचीन काल की तालों से उनका उद्भव नहीं हुआ है। दोनों ही पद्धतियों में तालों का विकास एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप में हुआ है।